International Journal of Trend in Scientific Research and Development (IJTSRD)
International Open Access Journal
ISSN No: 2456 - 6470 | www.ijtsrd.com | Volume - 2 | Issue – 3

सांस्कृतिक प्रतिष्ठा से गौरवान्वित संस्कृत भाषा

Dr. Saroj Meena
Associate Professor, Sanskrit Department, B.S.R. Govt. Arts College, Alwar, Rajasthan, India

सार
संस्कृत भाषा ने राष्ट्र को गौरवान्वित किया है। आज भारतीय संस्कृति की पौषक संस्कृत भाषा का विश्व के अन्य देशों में भी प्रचार-प्रसार हो रहा है। संस्कृत भाषा और साहित्य का विश्व में अपना एक विशिष्ट स्थान है। विश्व की समस्त प्राचीन भाषाओं और उनके साहित्य (वाङ्मय) में संस्कृत का ख़ास महत्व है। यह महत्व अनेक कारणों और दृष्टियों से है। भारत के सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, अध्यात्मिक, दर्शनिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन एवं विकास के सोपानों की संपूर्ण व्याख्या संस्कृत वाङ्मय के माध्यम से आज उपलब्ध है। सहस्राब्दियों से संस्कृत भाषा और इसके वाङ्मय की भारत में सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्राप्त रही है। भारत की यह सांस्कृतिक भाषा रही है। सहस्राब्दियों तक समग्र भारत को सांस्कृतिक और भावात्मक एकता में आबद्ध रखने को इस भाषा ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। इसी कारण भारतीय मनीषा ने इस भाषा को 'अमरभाषा' या 'देववाणी' के नाम से सम्मानित किया है। ऋग्वेद काल से लेकर आज तक इस भाषा के माध्यम से सभी प्रकार के वाङ्मय का निर्माण होता आ रहा है। हिमालय से लेकर कन्याकुमारी के छोर तक किसी न किसी रूप में संस्कृत का अध्ययन-अध्यापन अब तक होता चला आ रहा है। भारतीय संस्कृति और विचारधारा का माध्यम होकर भी यह भाषा अनेक दृष्टियों से धर्मनिरपेक्ष रही है। धार्मिक, साहित्यिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक और मानविकी आदि प्राय: समस्त प्रकार के वाङ्मय की रचना इस भाषा में हुई है।

परिचय
ऋग्वेदसंहिता के कतिपय मंडलों की भाषा संस्कृत वाणी का सर्वप्राचीन उपलब्ध स्वरूप है। ऋग्वेदसंहिता इस भाषा का पुरातनतम ग्रंथ है। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि ऋग्वेदसंहिता केवल संस्कृत भाषा का प्राचीनतम ग्रंथ नहीं है, - पितु वह आर्य जाति की संपूर्ण ग्रंथराशि में भी प्राचीनतम ग्रंथ है। दूसरे शब्दों में, समस्त विश्व वाङ्मय का वह (ऋक्संहिता) सबसे पुरातन उपलब्ध ग्रंथ है। दस मंडलों के इस ग्रंथ का द्वितीय से सप्तम मंडल तक का अंश प्राचीनतम और प्रथम तथा दशम मंडल अपेक्षाकृत अर्वाचीन है। ऋग्वेदकाल से लेकर आज तक उस भाषा की अखंड और अविच्छिन्न परंपरा चली आ रही है। ऋक्संहिता केवल भारतीय वाङ्मय की ही अमूल्य निधि नहीं है, वह समग्र आर्य जाति की, समस्त विश्व वाङ्मय की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विरासत है।[1]

विश्व की प्राचीन प्रागैतिहासिक संस्कृतियों का जो अध्ययन हुआ है, उसमें कदाचित् आर्य जाति से संबद्ध अनुशीलन का विशिष्ट स्थान है। इस वैशिष्ट्य का कारण यही ऋग्वेदसंहिता है। आर्य जाति की आद्यतम निवास भूमि, उनकी संस्कृति, सभ्यता, सामाजिक जीवन आदि के विषय में अनुशीलन हुए हैं। ऋक्संहिता उन सबका सर्वाधिक महत्वपूर्ण और प्रामाणिक स्रोत रहा है। पश्चिम के विद्वानों ने संस्कृत भाषा और ऋक्संहिता से परिचय पाने के कारण ही तुलनात्मक भाषा-विज्ञान के अध्ययन को सही दिशा दी तथा आर्य भाषाओं के भाषाशास्त्रीय विवेचन में प्रौढ़ि एवं शास्त्रीयता का विकास हुआ। भारत के वैदिक ऋषियों और विद्वानों ने अपने वैदिक वाङ्मय को मौखिक और श्रुतिपरंपरा द्वारा प्राचीनतम रूप में अत्यंत सावधानी के साथ सुरक्षित और अधिकृत अनाए रखा। किसी प्रकार के ध्वनिपरक, मात्रापरक यहाँ तक कि स्वरपरक परिवर्तन से पूर्णत: बचाते रहने का नि:स्वार्थ भाव में वैदिक वेदपाठी सहस्राब्दियों तक अथक प्रयास करते रहे। 'वेद' शब्द से मंत्रभाग (संहिताभाग) और 'ब्राह्मण' का बोध माना जाता था। 'ब्राह्मण' भाग के तीन अंश- ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् कहे गए हैं। लिपिकला के विकास से पर्व मौखिक परंपरा द्वारा वेदपाठियों ने इनका संरक्षण किया। बहुत-सा वैदिक वाङ्मय धीरे-धीरे लुप्त हो गया है। पर आज भी जितना उपलब्ध है, उसका महत्व असीम है। भारतीय दृष्टि से वेद को 'अपौरुषेय' माना गया है। कहा जाता है, मंत्रद्रष्टा ऋषियों ने मंत्रों का साक्षात्कार किया। आधुनिक जगत् इसे स्वीकार नहीं करता। फिर भी यह माना जाता है कि वेदव्यास ने वैदिक मंत्रों का संकलन करते हुए संहिताओं के रूप में उन्हें प्रतिष्ठित किया। अत: संपूर्ण भारतीय संस्कृति वेदव्यास की युग-युग तक ऋणी बनी रहेगी।[2]

ऋक्संहिता की भाषा को संस्कृत का आद्यतम उपलब्ध रूप कहा जा सकता है। यह भी माना जाता है कि उक्त संहिता के प्रथम और दशम मंडलों की भाषा प्राचीनतर है। कुछ विद्वान् प्राचीन वैदिक भाषा को परवर्ती पाणिनीय (लौकिक) संस्कृत से भिन्न

मानते हैं। पर यह पक्ष भ्रमपूर्ण है। वैदिक भाषा अभ्रांत रूप से संस्कृत भाषा का आद्य उपलब्ध रूप है। पाणिनि ने जिस संस्कृत भाषा का व्याकरण लिखा है, उसके दो अंश हैं-

1. वैदिक भाषा, जिसे 'अष्टाध्यायी' में 'छंदप्' कहा गया है।
2. भाषा, जिसे लोकभाषा या लौकिक भाषा के रूप में रखा गया है।

'व्याकरण महाभाष्य' नाम से प्रसिद्ध आचार्य पतंजलि के शब्दानुशासन में भी वैदिक भाषा और लौकिक भाषा के शब्दों का आरंभ में उल्लेख हुआ है। 'संस्कृत नाम दैंवी वागन्वाख्याता महर्षिभि:' के द्वारा जिसे देवभाषा या संस्कृत कहा गया है, उसे संभवत: यास्क, पाणिनि, कात्यायन और पंतजलि के समय तक छंदोभाषा (वैदिक भाषा) और लोकभाषा के दो नामों, स्तरों और रूपों द्वारा व्यक्त किया गया था। बहुत-से विद्वानों का मत है कि भाषा के लिए 'संस्कृत' का प्रयोग सर्वप्रथम 'वाल्मीकि रामायण' के 'सुंदरकांड' (30 सर्ग) में हनुमन् द्वारा विशेषण रूप से (संस्कृता वाक्) किया गया है। भारतीय परंपरा की किंवदंती के अनुसार संस्कृत भाषा पहले अव्याकृत थी, उसके प्रकृति, प्रत्ययादि का विश्लिष्ट विवेचन नहीं हुआ था। देवों द्वारा प्रार्थना करने पर देवराज इंद्र ने प्रकृति ने प्रकृति, प्रत्यय आदि के विश्लेषण विवेचन का उपायात्मक विधान प्रस्तुत किया। इसी 'संस्कार' विधान के कारण भारत की प्राचीनतम आर्य भाषा का नाम 'संस्कृत' पड़ा।

ऋक्संहिताकालीन साधु भाषा तथा 'ब्राह्मण', 'आरण्यक' और 'दशोपनिषद्' की साहित्यिक वैदिक भाषा के अनंतर उसी का विकसित स्वरूप लौकिक संस्कृत' या 'पाणिनीय संस्कृत' हुआ। इसे ही 'संस्कृत' या संस्कृत भाषा कहा गया। पर आज के कुछ भाषाविद संस्कृत को संस्कार द्वारा बनाई गई कृत्रिम भाषा मानते हैं। ऐसा मानते हैं कि इन संस्कृत का मूलाधार पूर्वतर काल को उदीच्य, मध्यदेशीय या आर्यावर्तीय विभाषाएँ थीं। 'विभाषा' या 'उदीचाम्' शब्द से पाणिनि सूत्रों में इनका उल्लेख उपलब्ध है। इनके अतिरिक्त भी 'प्राच्य' आदि बोलियाँ थीं। परंतु 'पाणिनि' ने भाषा का एक सार्वदेशिक और सर्वभारतीय परिष्कृत रूप स्थिर कर दिया। धीरे धीरे पाणिनि संमत भाषा का प्रयोग रूप और विकास प्राय: स्थायी हो गया। पतंजलि के समय तक 'आर्यावर्त' (आर्यनिवास) के शिष्ट जनों में संस्कृत बोलचाल की भाषा थी।[2] पर शीघ्र ही वह समग्र भारत के द्विजातिवर्ग और विद्वत्समाज की सांस्कृतिक और आकर भाषा हो गई।

विचार-विमर्श

संस्कृत भाषा के विकास स्तरों की दृष्टि से अनेक विद्वानों ने अनेक रूप से इसका ऐतिहासि काल विभाजन किया है। सामान्य सुविधा की दृष्टि से अधिक मान्य निम्नांकित काल विभाजन इस प्रकार है-

1. आदिकाल, वेदसंहिताओं और वाङ्मय का काल - ई. पू. 4500 से 800 ई. पू. तक
2. मध्य काल, ई. पू. 800 से 800 ई. तक, जिसमें शास्त्रों दर्शनसूत्रों, वेदांग ग्रंथों, काव्यों तथा कुछ प्रमुख साहित्यशास्त्रीय ग्रंथों का निर्माण हुआ।
3. परवर्तीकाल, 800 ई. से लेकर 1600 ई. या अब तक का आधुनिक काल-जिस युग में काव्य, नाटक, साहित्यशास्त्र, तंत्रशास्त्र, शिल्पशास्त्र आदि के ग्रंथों की रचना के साथ साथ मूल ग्रंथों की व्याख्यात्मक, कृतियों की महत्वपूर्ण सर्जना हुई।

भाष्य, टीका, विवरण, व्याख्यान आदि के रूप में जिन सहस्रों ग्रंथों का निर्माण हुआ, उनमें अनेक भाष्य और टीकाओं की प्रतिष्ठा, मान्यता और प्रसिद्धि मूलग्रंथों से भी कहीं-कहीं अधिक हुई। इस प्रकार कहा जा सकता है कि आधुनिक विद्वानों के अनुसार भी संस्कृत भाषा का अखंड प्रवाह पाँच सहस्र वर्षों से बहता चला आ रहा है। भारत में यह आर्य भाषा का सर्वाधिक महत्वशाली, व्यापक और संपन्न स्वरूप है। इसके माध्यम से भारत की उत्कृष्टतम मनीषा, प्रतिभा, अमूल्य चिंतन, मनन, विवेक, रचनात्मक, सर्जना और वैचारिक प्रज्ञा का अभिव्यंजन हुआ है। आज भी सभी क्षेत्रों में इस भाषा के द्वारा ग्रंथ निर्माण की क्षीण धारा अविच्छिन्न रूप से वह रही है। आज भी यह भाषा, अत्यंत सीमित क्षेत्र में ही सही, बोली जाती है। इसमें व्याख्यान होते हैं और भारत के विभिन्न प्रादेशिक भाषा-भाषी पंडितजन इसका परस्पर वार्तालाप में प्रयोग करते हैं। हिंदुओं के सांस्कारिक कार्यों में आज भी यह प्रयुक्त होती है। इसी कारण ग्रीक और लैटिन आदि प्राचीन मृत भाषाओं से संस्कृत की स्थिति भिन्न है। यह मृतभाषा नहीं, अमरभाषा है।[3]

ऐतिहासिक भाषा विज्ञान की दृष्टि से संस्कृत भाषा आर्य भाषा परिवार के अंतर्गत रखी गई है। आर्य जाति भारत में बाहर से आई या यहाँ इसका निवास था, इत्यादि विचार अनावश्यक होने से यहाँ नहीं किया जा रहा है, पर आधुनिक भाषा विज्ञान के पंडितों की मान्यता के अनुसार भारत यूरोपीय भाषा-भाषियों की जो नाना प्राचीन भाषाएँ थीं, वे वस्तुत: एक मूलभाषा की देशकालानुसारी विभिन्न शाखाएँ थीं। उन सबकी उद्गमभाषा या मूलभाषा को आद्य आर्य भाषा कहते हैं। कुछ विद्वानों के मत में-वीरा-मूल निवास स्थान के वासी सुसंगठित आर्यों को ही 'वीरोस' या वीरास् (वीरा:) कहते थे। वीरोस् (वीरो) शब्द द्वारा जिन पूर्वोक्त प्राचीन आर्य भाषा समूह भाषियों का द्योतन होता है, उन विविध प्राचीन भाषा-भाषियों को विरास (संवीरा:) कहा गया है। अर्थात् समस्त भाषाएँ पारिवारिक दृष्टि से आर्य परिवार की भाषाएँ हैं। संस्कृत का इनमें अन्यतम स्थान है। उक्त परिवार की 'केंतुम्' और 'शतम्' दो प्रमुख शाखाएँ हैं। प्रथम के अंतर्गत ग्रीक, लातिन आदि आती हैं। संस्कृत का स्थान 'शतम्' के अंतर्गत भारत-ईरानी शाखा में माना गया है।

आर्य परिवार में कौन प्राचीन, प्राचीनतर और प्राचीनतम है, यह पूर्णत: निश्चित नहीं है। फिर भी आधुनिक अधिकांश भाषाविद ग्रीक, लातिन आदि को आद्य आर्य भाषा की ज्येष्ठ संतति और संस्कृत को उनकी छोटी बहिन मानते हैं। इतना ही नहीं भारत-ईरानी-शाखा की प्राचीनतम अवस्ता को भी संस्कृत से प्राचीन मानते हैं। परंतु अनेक भारतीय विद्वान् समझते हैं कि

'जिद-अवस्ता' की अवस्ता का स्वरूप ऋक्भाषा की अपेक्षा नव्य है। जो भी हो, इतना निश्चित है कि ग्रंथ रूप में स्मृति रूप से अवशिष्ट वाङ्मय में ऋक्संहिता प्राचीनतम है और इसी कारण वह भाषा भी अपनी उपलब्धि में प्राचीनतम है। उसकी वैदिक संहिताओं की बड़ी विशेषता यह है कि हजारों वर्षों तक जब लिपि कला का भी प्रादुर्भाव नहीं था, वैदिक संहिताएँ मौखिक और श्रुति परंपरा द्वारा गुरु-शिष्यों के समाज में अखंड रूप से प्रवहमान थीं। उच्चारण की शुद्धता को इतना सुरक्षित रखा गया कि ध्वनि ओर मात्राएँ, ही नहीं, सहस्रों वर्षों पूर्व से आज तक वैदिक मंत्रों में कहीं पाटभेद नहीं हुआ। उदात्त अनुदात्तादि स्वरों का उच्चारण शुद्ध रूप में पूर्णत: अविकृत रहा। आधुनिक भाषा वैज्ञानिक यह मानते हैं कि स्वरों की दृष्टि से ग्रीक, लातिन आदि के 'केंतुम्' वर्ग की भाषाएँ अधिक संपन्न भी हैं और मूल या आद्य आर्य भाषा के अधिक समीप भी। उनमें उक्त भाषा की स्वर संपत्ति अधिक सुरक्षित हैं। संस्कृत में व्यंजन संपत्ति अधिक सुरक्षित है। भाषा के संघटनात्मक अथवा रूपात्मक विचार की दृष्टि से संस्कृत भाषा को विभक्ति प्रधान अथवा 'श्लिष्टभाषा' कहा जाता है। प्रामाणिकता के विचार से इस भाषा का सर्वप्राचीन उपलब्ध व्याकरण पाणिनि की अष्टाध्यायी है। कम से कम 600 ई. पू. का यह ग्रंथ आज भी समस्त विश्व में अतुलनीय व्याकरण है। विश्व के और मुख्यत: अमरीका के भाषाशास्त्री संघटनात्मक भाषा विज्ञान की दृष्टि से अष्टाध्यायी को आज भी विश्व का सर्वोत्तम ग्रंथ मानते हैं। 'ब्रूमफील्ड' ने अपने 'लैंग्वेज' तथा अन्य कृतियों में इस तथ्य की पुष्ट स्थापना की है। पाणिनि के पूर्व संस्कृत भाषा निश्चय ही शिष्ट एवं वैदिक जनों की व्यवहार भाषा थी। असंस्कृत जनों में भी बहुत सी बोलियाँ उस समय प्रचलित रही होंगी। पर यह मत आधुनिक भाषाविज्ञों को मान्य नहीं है। वे कहते हैं कि संस्कृत कभी भी व्यवहार भाषा नहीं थी। जनता की भाषाओं को तत्कालीन प्राकृत कहा जा सकता है। देवभाषा तत्वत: कृत्रिम या संस्कार द्वारा निर्मित ब्राह्मण पंडितों की भाषा थी, लोकभाषा नहीं। परंतु यह मत सर्वमान्य नहीं है।[4]

पाणिनि से लेकर पतंजलि तक सभी ने संस्कृत का लोक की भाषा कहा है, लौकिक भाषा बताया है। अन्य सैकड़ों प्रमाण सिद्ध करते हैं कि 'संस्कृत' वैदिक और वैदिकोत्तर पूर्व पाणिनिकाल में लोकभाषा और व्यवहार भाषा थी। यह अवश्य रहा होगा कि देश, काल और समाज के संदर्भ में उसकी अपनी सीमा रही होगी। बाद में चलकर वह पठित समाज की साहित्यिक और सांस्कृतिक भाषा बन गई। तदनंतर यह समस्त भारत में सभी पंडितों की, चाहे वे आर्य रहें हों या आर्येतर जाति के, सभी की, सर्वमान्य सांस्कृतिक भाषा हो गई और आसेतु हिमाचल इसका प्रसार, समादर और प्रचार रहा एवं आज भी बना हुआ है।

लगभग सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध से यूरोप और पश्चिमी देशों के मिशनरी एवं अन्य विद्याप्रेमियों को संस्कृत का परिचय प्राप्त हुआ। धीरे-धीरे पश्चिम में ही नहीं, समस्त विश्व में संस्कृत का प्रचार हुआ। जर्मन, अंग्रेज़, फ्राँसीसी, अमरीकी तथा यूरोप के अनेक छोटे बड़े देश के निवासी विद्वानों ने विशेष रूप से संस्कृत के अध्ययन अनुशीलन को आधुनिक विद्वानों में प्रजाप्रिय बनाया। आधुनिक विद्वानों और अनुशीलकों के मत से विश्व की पुराभाषाओं में संस्कृत सर्वाधिक व्यवस्थित, वैज्ञानिक और संपन्न भाषा है। वह आज केवल भारतीय भाषा ही नहीं, एक रूप से विश्वभाषा भी है। यह कहा जा सकता है कि भूमंडल के प्रयत्न-भाषा-साहित्यों में कदाचित् संस्कृत का वाङ्मय सर्वाधिक विशाल, व्यापक, चतुर्मुखी और संपन्न है। संसार के प्राय: सभी विकसित और संसार के प्राय: सभी विकासमान देशों में संस्कृत भाषा और साहित्य का आज अध्ययन-अध्यापन हो रहा है।

परिणाम

संस्कृत भाषा का परिचय होने से ही आर्य जाति, उसकी संस्कृति, जीवन और तथाकथित मूल आद्य आर्य भाषा से संबद्ध विषयों के अध्ययन का पश्चिमी विद्वानों को ठोस आधार प्राप्त हुआ। प्राचीन ग्रीक, लातिन, अवस्ता और ऋक्संस्कृत आदि के आधार पर मूल आद्य आर्य भाषा की ध्वनि, व्याकरण और स्वरूप की परिकल्पना की जा सकी, जिससे ऋक्संस्कृत का अवदान सबसे अधिक महत्व का है। ग्रीक, लातिन आदि भाषाओं के साथ संस्कृत का पारिवारिक और निकट संबंध है, पर भारत-ईरानी-वर्ग की भाषाओं के साथ[6] संस्कृत की सर्वाधिक निकटता है। भारत की सभी आद्य, मध्यकालीन एवं आधुनिक आर्य भाषाओं के विकास में मूलत: ऋग्वेद एवं तदुत्तरकालीन संस्कृत का आधारिक एवं औपादानिक योगदान रहा है। आधुनिक भाषा वैज्ञानिक मानते हैं कि ऋग्वेद काल से ही जन सामान्य में बोलचाल की तथाभूत प्राकृत भाषाएँ अवश्य प्रचलित रही होंगी। उन्हीं से पालि, प्राकृत, अपभ्रंश तथा तदुत्तरकालीन आर्य भाषाओं का विकास हुआ। परंतु इस विकास में संस्कृत भाषा का सर्वाधिक और सर्वविध योगदान रहा है। यहीं पर यह भी याद रखना चाहिए कि संस्कृत भाषा ने भारत के विभिन्न प्रदेशों और अंचलों की आर्येतर भाषाओं को भी काफ़ी प्रभावित किया तथा स्वयं उनसे प्रभावित हुई; उन भाषाओं और उनके भाषणकर्ताओं की संस्कृति और साहित्य को तो प्रभावित किया ही, उनकी भाषाओं, शब्दकोश उनकी ध्वनिमाला और लिपिकला को भी अपने योगदान से लाभान्वित किया। भारत की दो प्राचीन लिपियाँ- ब्राह्मी (बाएँ से लिखी जानेवाली) और खरोष्ठी (दाएँ से लेख्य) थीं। इनमें ब्राह्मी को संस्कृत ने मुख्यत: अपनाया।[6]

भाषा की दृष्टि से संस्कृत की ध्वनिमाला पर्याप्त संपन्न है। स्वरों की दृष्टि से यद्यपि ग्रीक, लातिन आदि का विशिष्ट स्थान है, तथापि अपने क्षेत्र के विचार से संस्कृत की स्वरमाला पर्याप्त और भाषानुरूप है। व्यंजनमाला अत्यंत संपन्न है। सहस्रों वर्षों तक भारतीय आर्यों के आद्यषुतिसाहित्य का अध्यनाध्यापन गुरु शिष्यों द्वारा मौखिक परंपरा के रूप में प्रवर्तमान रहा, क्योंकि कदाचित उस युग में लिपिकला का उद्भव और विकास नहीं हो पाया था। संभवत: पाणिनि के कुछ पूर्व या कुछ बाद से लिपि का भारत में प्रयोग चल पड़ा और मुख्यत: 'ब्राह्मी' को संस्कृत भाषा का वाहन बनाया गया। इसी ब्राह्मी ने आर्य और आर्यतर अधिकांश लिपियों की वर्णमला और वर्णक्रम को भी प्रभावित किया। मध्यकालीन नाना भारतीय द्रविड़ भाषाओं तथा तमिल, तेलगु आदि की वर्णमाला पर भी संस्कत भाषा और ब्राह्मी लिपि का पर्याप्त प्रभाव है। ध्वनिमाला और ध्वनिक्रम की दृष्टि से पाणिनि काल से प्रचलित संस्कृत वर्णमाला आज भी कदाचित् विश्व की सर्वाधिक वैज्ञानिक

एवं शास्त्रीय वर्णमाला है। संस्कृत भाषा के साथ-साथ समस्त विश्व में प्रत्यक्ष या रोमन अकारांतक के रूप में आज समस्त संसार में इसका प्रचार हो गया है।[5]

निष्कर्ष

यहाँ साहित्य शब्द का प्रयोग 'वाङ्मय' के लिए है। ऊपर वेद संहिताओं का उल्लेख हुआ है। वेद चार हैं- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। इनकी अनेक शाखाएँ थीं, जिनमें बहुत-सी लुप्त हो चुकी हैं और कुछ सुरक्षित बच गई हैं, जिनके संहिताग्रंथ हमें आज उपलब्ध हैं। इन्हीं की शाखाओं से संबद्ध ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद नामक ग्रंथों का विशाल वाङ्मय प्राप्त है। वेदांगों में सर्वप्रमुख 'कल्पसूत्र' हैं, जिनके अवांतर वर्गों के रूप में और सूत्र, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र (शुल्बसूत्र भी हैं, का भी व्यापक साहित्य बचा हुआ है। इन्हीं की व्याख्या के रूप में समयानुसार धर्म संहिताओं और स्मृति ग्रंथों का जो प्रचुर वाङ्मय बना, मनुस्मृति का उनमें प्रमुख स्थान है। वेदांगों में शिक्षा-प्रातिशाख्य, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छंदशास्त्र से संबद्ध ग्रंथों का वैदिकोत्तर काल से निर्माण होता रहा है। अब तक इन सबका विशाल साहित्य उपलब्ध है।[7]

आज ज्योतिष की तीन शाखाएँ- 'गणित', 'सिद्धांत' और 'फलित' विकसित हो चुकी हैं और भारतीय गणितज्ञों की विश्व को बहुत-सी मौलिक देन हैं। पाणि॒नि और उनसे पूर्वकालीन तथा परवर्ती वैयाकरणों द्वारा जाने कितने व्याकरणों की रचना हुई, जिनमें पाणिनि का व्याकरण-संप्रदाय 2500 वर्षों से प्रतिष्ठित माना गया और आज विश्व भर में उसकी महिमा मान्य हो चुकी है। यास्क का 'निरुक्त' पाणिनि से पूर्वकाल का ग्रंथ है और उससे भी पहले निरुक्तिविद्या के अनेक आचार्य प्रसिद्ध हो चुके थे। शिक्षाप्रातिशाख्य ग्रंथों में कदाचित ध्वनि विज्ञान, शास्त्र आदि का जितना प्राचीन और वैज्ञानिक विवेचन भारत की संस्कृत भाषा में हुआ है, वह अतुलनीय और आश्चर्यकारी है। उपवेद के रूप में चिकित्सा विज्ञान के रूप में आयुर्वेद विद्या का वैदिक काल से ही प्रचार था और उसके पंडिताग्रंथ प्राचीन भारतीय मनीषा के वैज्ञानिक अध्ययन की विस्मयकारी निधि है। इस विद्या के भी विशाल वाङ्मय का कालांतर में निर्माण हुआ। इसी प्रकार धनुर्वेद और राजनीति, गांधर्ववेद आदि को उपवेद कहा गया है तथा इनके विषय को लेकर ग्रंथ के रूप में अथवा प्रसंगतिर्गत संदर्भों में पर्याप्त विचार मिलता है।[8]

संदर्भ

[1] संस्कृत भाषा और साहित्य **(हिन्दी)** भारतखोज। अभिगमन तिथि: 27 फरवरी, 2015।

[2] प्रागादर्शात्प्रत्यक्कालकवनाद्दक्षिणेन हिमवंतमुत्तरेण वारियात्रमेतस्मिन्नार्यावर्ते आर्यानिवासे..... (महाभाष्य, 6।3।109)

[3] वैदिक संस्कृत, अवस्ता अर्थात् प्राचीनतम पारसी ग्रीक, प्राचीन गॉथिक तथा प्राचीनतम जर्मन, लैटिन, प्राचीनतम आइरिश तथा नाना वेल्ट बोलियाँ, प्राचीनतम स्लाव एवं बाल्टिक भाषाएँ, अरमीनियन, हित्ती, बुखारी आदि।

[4] जिसे मूल आर्यभाषा, आद्य आर्यभाषा, इंडोजर्मनिक भाषा, आद्य-भारत-योरोपीय भाषा, फादरलैंग्वेज आदि।

[5] दोनों ही शतवात्तक शब्द

[6] जिनमें अवस्ता, पहलवी, फ़ारसी, ईरानी, पश्तो आदि बहुत-सी प्राचीन नवीन भाषाएँ हैं।

[7] जैसा आधुनिक इतिहासज्ञ लिपिशास्त्री मानते हैं।

[8] 'चरकसंहिता', 'सुश्रुतसंहिता', 'भेडसंहिता' आदि।